[2008] 8 एस.सी.आर. 684

अर्जन सिंह

बनाम

पुनित अहलूवालिया और अन्य।

(2008 की सिविल अपील संख्या 3573)

14 मई 2008

[न्यायाधिपतिगण, एस.बी. सिन्हा एवं लोकेश्वर सिंह पंथ]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

आदेश 23, नियम 3- वाद में समझौता- संपत्ति के मालिक के खिलाफ दो विभिन्न वादीगण द्वारा एक ही प्रतिवादी के विरूद्ध विशिष्ट अनुतोष के लिए दो वाद- दोनों वादी को संबंधित वाद में प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया- एक वाद में समझौता हुआ और तदानुसार डिक्री पारित की गई- निर्धारित- दोनों ही दावों को एकसाथ विचार करना आवश्यक था- दो वादीगण का एक प्रतिदावा था- यह एक ऐसा मामला था जहां आदेश 23, नियम 3 का प्रथम भाग लागू होगा- चुंकि अन्य वादी समझौते के लिए एक पक्ष नहीं था] यह उस पर बाध्यकारी नहीं होगा-

विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963- धारा 19 ओर 20- संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 – धारा 52, विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963

धारा 20- विनिर्दिष्ट निष्पादन की डिक्री के संबंध में- दो वाद दो अलग-अलग वादीगण द्वारा एक ही प्रतिवादी के विरूद्ध जो संपत्ति का मालिक था दायर दोनो वादों में वादी ने संबंधित वादों में प्रतिवादी के रूप में पैरवी की- समझौते की डिक्री एक मुकदमें में पारित हुई- निर्धारित: दूसरे मुकदमें में वादी पर बाध्यकारी नहीं होगा क्यूंकि समझौते के कारण उसका दावा खारिज नहीं होगा- इसके अलावा, दोनों ही मुकदमें एक साथ विचारण करने की आवश्यकता थी- प्रतिवाद होने के कारण न्यायालय ने कहा कि अधिनियम की धारा 20 के संदर्भ में किसी न किसी मुकदमे में न्यायालय अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश 23, नियम 3- संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 – धारा 52, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882:

धारा 52, प्रतिवादी का संपत्ति अंतरण का वाद लंबित- निर्धारित- यदि निषेधाज्ञा का आदेश किसी विशेष तिथी तक लागू था तो तकनीकी रूप से वह उसके बाद लागू नहीं रहेगा और भूमि का मालिक समझौता कर सकता था, लेकिन वाद लंबन के सिद्धांत से विक्रय विलेख प्रभावित होगा- वाद लंबन का सिद्धांत- विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963- धारा 19 और 20 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश 23, नियम 3

अपीलकर्ता ने वाद की संपत्ति के मालिक(मुख्य प्रतिवादी) के खिलाफ अनुबंध के विशेष निष्पादन के लिए वाद दायर किया। उसमें एक पक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा पारित की गई थी, जिसे समय-समय पर बढाया गया और 16.10.1996 तक जारी रखा गया। आगे बढाने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था लेकिन कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। बाद में, उसी संपत्ति के संबंध में अनुबंध के विशिष्ट पालन के लिए एक मुकदमा मुख्य प्रतिवादी के खिलाफ 'एस' द्वारा दायर किया गया था। अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमें में उक्त 'एस' को प्रतिवादी संख्यां 2 के रूप में शामिल किया गया था। इसी तरह, बाद के मुकदमे में पक्षकार बनाने के लिए अपीलकर्ता के आवेदन को भी अनुमति दी गई थी। बाद में मुकदमें में मुख्य प्रतिवादी ओर प्रतिवादी संख्या 2 के बीच एक कथित समझौते पर सहमति हुई और 19.02.2003 को एक सहमति डिक्री पारित की गई, जिसके अनुसार प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में जो 'एस' का नामित व्यक्ति था दिनांक 25.03.2003 को विक्रय विलेख निष्पादित किया गया। अपीलकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23, नियम 3 के तहत एक आवेदन दायर किया जिसमें दिनांक 19.02.2003 के आदेश को वापिस लेने की मांग की गई। उक्त आवेदन को विचारण न्यायालय ने अनुमति दे दी थी। हांलाकि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया।

पहले मुकदमे के वादी द्वारा दायर इस अपील में, अपीलकर्ता के लिए यह तर्क दिया था कि उच्च न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि यह एक ऐसा मामला था जहां आदेश 23, नियम 3 का पहला भाग लागू होगा; और चूंकि अदालत ने अंतरिम आदेश को बढाने के लिए लगाये आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया, इस सिद्धांत पर कि अदालत की गलती के कारण् किसी विपक्ष को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए, दिनांक 25.03.2003 का विक्रय विलेख विधि के अनुसार सही नहीं माना जाना चाहिए।

न्यायालय ने अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया:

1.1 एक समझौता जो कानून की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है वह अवैधानिक होगा और इसलिए, उसके संदर्भ में डिक्री पारित नहीं की जा सकती। जब कोई समझौता किया जाता है तो न्यायालय का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि क्या वह कानून की आवश्यकताओं को पूरा करता है। यह सच हो सकता है कि वाद के पक्षकारों ने समझोता याचिका पर हस्ताक्षर किए है लेकिन मोैजुदा मामले में, निर्विवाद रूप से, अपीलकर्ता का प्रतिदावा है। उनके द्वारा दायर किया गया वाद, एस द्वारा दायर पर एक साथ विचार किया जाना आवश्यक था। विर्निदिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20 को ध्यान मे रखते हुए न्यायालय किसी एक या दूसरे

मुकदमें में अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है। किसी समझौते या अन्य कारण से, अपीलकर्ता का दावा विफल नही हो सकता था। [पैरा 8] [692-ए-डी]

1.2 यह केवल समझौता की कथित शर्तों के अनुसरण में या उन्हे आगे बढाने के लिए, विक्रय विलेख, 25.03.2003 को निष्पादित किया गया था। पक्षकारों द्वारा और उनके बीच किया गया समझौता इस धारणा पर आगे बढा कि अपीलकर्ता के मामले में विशिष्ट कार्य के लिए कोई डिक्री पारित नही की जायेगी। इसमे गलत दर्ज किया गया कि अपीलकर्ता वाद में एक पूर्व पक्षकार प्रतिवादी के रूप में है। उक्त समझौता, अवैधानिक था। [पैरा 9 और 12] [693-डी-एफ, 695-जी]

1.3 विचारण न्यायालय ने सही माना की यह एक ऐसा मामला था जहां सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 का पहला भाग लागू होगा। चूंकि अपीलकर्ता समझौते में पक्षकार नही था, इसलिये यह उस पर बाध्यकारी नही था। [पैरा 11] [694-ई, एफ]

पुष्पा देवी भगत (मृतक) से उत्तराधिकारी साधना राव (श्रीमति) बनाम राजेन्द्र सिंह व अन्य (2006) 5 एस सी सी 566 पर आधारित।

2. उच्च न्यायालय का यह मानना सही था कि 16.10.1996 के बाद निषोधाज्ञा का कोई भी आदेश प्रभावी नही था। यदि निषेधाज्ञा का आदेश किसी तिथि तक प्रभावी था, तो तकनीकी रूप इसके बाद निषेधाज्ञा का

आदेश प्रभावी नही रहेगा। इस प्रकार भूमि का मालिक और 'एस' समझौता कर सकते थे। इसका प्रभाव यह होगा कि उक्त विक्रय विलेख अपीलकर्ता पर बाध्यकारी नही होगा। यह वाद लंबन के सिद्धांत से प्रभावित होगा, जैसा संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1872 की धारा 52 के तहत दर्शाया गया है। उक्त विक्रय विलेख अपीलकर्ता के पक्ष में डिक्री पारित करने में न्यायालय के रास्ते में नही आयेगा। इसकी वैद्यता या अन्यता पर विचार करना आवश्यक नही होगा क्योंकि अपीलकर्ता इससे बाध्य नही है। 'एस' और उससे नामित प्रतिवादी संख्या1/ प्रतिवादी संख्या 3 को वाद में लंबित होने के बारे में बाद में पता माना जायेगा। यहां तक की विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 19 भी लागू होगी। हालांकि विक्रय विलेख को रद्द करने की आवश्यकता नही है। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 19 के संबंध में इसका अपना प्रभाव होगा। [पैरा 16 और 20] [696-एफ-एच, 697-ए, 698-सी]

प्राणकृष्णा व अन्य बनाम उमाकांत पांडा व अन्य एआईआर 1989 उडीसा 148; फणी भूषण डे बनाम सुधामयी रॉय और अन्य 91 कलकत्ता साप्ताहिक नोटस 1078, और हरबालास और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य 1973 पंजाब लॉ जर्नल; गुरूनाथ मनोहर पावरकर और अन्य बनाम नागेश सिद्दपा नवलगुडं और अन्य 2007 (14) स्केल 283; प्रवीण सी शाह बनाम केए मौहम्मद अली और अन्य (2001) 8 एससीसी 650;

बार काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम केरल उच्च न्यायालय (2004) 6 एससीसी 311- का उल्लेख किया गया है।

हैंडकिंसन बनाम हैंडकिंसन (1952) 2 सभी ईआर 567- उल्लेखित।

3. हालांकि विचारणीय न्यायालय का यह मानना सही था कि कथित समझौता विधि की नजर में सही नही था। सभी पक्षों की लिखित सहमति के बिना यह अवैधानिक था। निर्विवाद रूप से, न केवल यह पार्टियों पर बाध्यकारी नही था, इस प्रकृति के मामले में न्यायालय अपीलकर्ता के मामले पर विचार करते समय इस तथ्य पर ध्यान नही देगा की विक्रय विलेख उसके अनुसार निष्पादित किया गया है। प्रतिवादी संख्या 3, इन निष्कर्षों के तार्किक परिणामों के रूप में कि वह बिना नोटिस के सद्भाविक क्रेता है, यह प्रमाणिक होने की दलील पेश करने का हकदार नही होगा।

न्यायालय जैसा कि वह उचित समझे और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 20 के अंतर्गत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए ऐसा आदेश या ऐसे आदेश पारित कर सकेगा। इस हद तक विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जाती है और उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द किया जाता है।[पैरा 20] [698-डी, ई, एफ]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं 3573/2008

उच्च न्यायालय, पंजाब और हरियाणा, चंडीगढ के सी आर नं0 947/2006 में निर्णय/आदेश दिनांकित 10.10.2006 से।

जे एल गुप्ता, अशोक के महाजन- अपीलकर्ता की ओर से।

ध्रुव मेहता, डी एस वालिया, धीरज, रीता दीवान पुरी और पी एन पुरी, प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का फैसला न्यायाधिपति एस बी सिन्हा द्वारा सुनाया गया।

1. याचिका स्वीकृत।

2. डॉ. एसआर बावा चंडीगढ़ शहर में मकान नंबर 169, सेक्शन 11-ए वाली संपत्ति के मालिक थे। उक्त संपत्ति के संबंध में अनुबंध के विशिष्ट पालन के लिए दो मुकदमे सिविल जज, चंडीगढ़ की अदालत में दायर किए गए थे; उनमें से एक अपीलकर्ता द्वारा 20.6.1995 को 32,00,000/- रुपये के विचार के लिए किए गए बिक्री के लिए एक कथित मौखिक समझौते के आधार पर दायर किया गया था, जिसके संदर्भ में कथित तौर पर 3,20,000/- रुपये की राशि थी। 22.6.1995 को बैंकर्स चेक के माध्यम से उनके खाते में जमा किया गया था। अपीलकर्ता के उक्त समझौते को अक्टूबर 1995 या उसके आसपास डॉ. एसआर बावा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। विशिष्ट निष्पादन के लिए एक मुकदमा 20.11.1995 को दायर किया गया था। निषेधाज्ञा का एक पक्षीय आदेश एक सीमित अवधि के लिए जारी किया गया था, लेकिन समय-समय पर इसे स्वीकार्य रूप से बढ़ाया गया था, अंतिम को 16.10.1996 तक बढ़ाया गया था। विस्तार के

लिए एक आवेदन दायर किया गया था लेकिन कोई आदेश पारित नहीं किया गया था।

दिनांक 20.6.1995 के एक कथित समझौते पर आधारित या उसके आधार पर, संजीव शर्मा ने 1.2.1996 को मुकदमे की संपत्ति के संबंध में अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए एक मुकदमा दायर किया, जिस पर डॉ. बावा भी अस्वीकृत थे। उस मुकदमे में भी, ट्रायल कोर्ट ने निषेधाज्ञा दी थी। संजीव शर्मा ने आवेदन किया था और दिनांक 14.10.1997 के एक आदेश द्वारा अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमे में उन्हें प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया था। इसी प्रकार, प्रतिवादी के रूप में शामिल होने के लिए अपीलकर्ता के आवेदन को दिनांक 18.12.1997 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी।

दोनों मुकदमों में मुद्दे समान होने के कारण, पार्टियों ने दोनों मुकदमों में समान साक्ष्य पेश किए। हालाँकि, मुख्य प्रतिवादी, डॉ. बावा ने सबूत नहीं दिए।

3. श्री संजीव शर्मा द्वारा दायर वाद को लोक अदालत में भेजा गया था। हालाँकि, कोई समझौता नहीं हुआ।

इसलिए, डॉ. बावा और संजीव शर्मा के बीच एक कथित समझौता हुआ। 19.2.2003 को या उसके आसपास, एक सहमति डिक्री पारित की गई थी, जिसके अनुसरण में या उसके आगे, डॉ. बावा द्वारा संजीव शर्मा के

नामित व्यक्ति, पुनीत अहलूवालिया के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। अपीलकर्ता ने आदेश दिनांक 19.2.2003 को वापस लेने के लिए आदेश 23 नियम 3 के तहत एक आवेदन दायर किया। उक्त मुकदमे में पुनित अहलूवालिया को भी प्रतिवादी संख्या 3 के रूप में शामिल किया गया था। दिनांक 21.1.2006 के एक आदेश के कारण, वापस बुलाने के लिए उक्त आवेदन को विद्वान विचारणीय न्यायाधीश ने यह कहते हुए अनुमति दे दी थी:

(1) सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3 के दूसरे भाग के संदर्भ में डॉ. बावा और संजीव शर्मा द्वारा और उनके बीच की गई कथित सहमति डिक्री निष्पादित विक्रय विलेख के रूप में उसके अनुसरण में वैध नहीं थी; और

(2) यद्यपि अपीलकर्ता के मामले में पारित अंतरिम निषेधाज्ञा का आदेश 16.10.1996 से आगे नहीं बढ़ाया गया था, क्योंकि इसके लिए एक आवेदन दायर किया गया था और अपीलकर्ता न्यायालय की कार्यवाही के कारण प्रभावित नहीं हो सकता था और उसी के कारण निषेधाज्ञा के आदेश का उल्लंघन करते हुए विक्रय पत्र कानून की दृष्टि से अवैध था।

4. हालाँकि, उच्च न्यायालय ने, आक्षेपित निर्णय के आधार पर अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, विद्वान न्यायाधीश के उक्त आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया कि यह आदेश 23 नियम 3 का

पहला भाग है जो मामले में लागू था। यह राय दी गई कि चूंकि अंतरिम आदेश का विस्तार नहीं किया गया था, निषेधाज्ञा के उक्त आदेश के उल्लंघन में किसी भी विक्रय विलेख के निष्पादन का प्रश्न ही नहीं उठता।

5. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जेएल गुप्ता का तर्क रहा कि:

(1) उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में एक स्पष्ट त्रुटि की क्योंकि वह इस बात पर विचार करने में विफल रहा कि यह एक ऐसा मामला था जहां आदेश 23 नियम 3 का पहला भाग लागू होगा; और

(2) सुविख्यात कानूनी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कि किसी भी पक्ष को न्यायालय की गलती के कारण नुकसान नहीं हो सकता, दिनांक 25.3.2003 के विक्रय विलेख को कानून की नजर में सही नहीं माना जाना चाहिए।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री ध्रुव मेहता ने तर्क रखा कि:

(1) आदेशिका दिनांक 4.3.2003 से, ऐसा प्रतीत होता है कि मुकदमे में पक्षकारों द्वारा समझौता करना जाहिर किया गया है और, हालांकि इस प्रकार, अपीलकर्ता को इस बात की जानकारी थी उसने समझौते दिनांक 19.2.2003 के संबंध में अपनी कोई आपत्ति दर्ज नहीं कराई।

(2) कथित आवेदन दिनांक 31.7.2003 प्रस्तावित प्रार्थना पत्र को वापस लेने के लिए सुनवाई योग्य नहीं था क्योंकि दिनांक 19.2.2003 के आदेश के खिलाफ अपील उच्च न्यायालय के समक्ष दायर थी।

(3) यह तर्क देना गलत है कि कानूनी काल्पनिक या अन्यथा कारण से निषेधाज्ञा का आदेश आगे भी जारी रह सकता है और, किसी भी घटना में, अपीलकर्ता ने कोई कदम नहीं उठाया है उसके बाद निषेधाज्ञा का आदेश प्राप्त करने के लिए, आक्षेपित आदेश में दोष नहीं पाया जा सकता है जबकि निषेधाज्ञा का आदेश 16.1.1996 तक प्रभावी रहा है।

(4) यह मानते हुए कि निषेधाज्ञा के आदेश का कोई उल्लंघन हुआ है, इस प्रकार, अदालत केवल इसका सहारा ले सकती थी कि उसके परिणाम सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 नियम 2ए के संदर्भ में प्रदान किए गए हैं, इस प्रकार, इसकी शक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के तहत सहारा नहीं लिया जा सकता।

(5) अपीलकर्ता का यह तर्क भ्रामक है कि विक्रय विलेख कानूनन निष्क्रिय हो गया है ।

7. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3 इस प्रकार है:

> "3. वाद का समझौता- जहां यह न्यायालय की संतुष्टि के लिए साबित हो गया है कि वाद में पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से पक्षकारों द्वारा उनके मध्य में कोइ विधिक करार या

समझौता लिखित एवं हस्ताक्षरित किया गया है, या जहां प्रतिवादी वादी को इस संबंध में संतुष्ट करता है, मामले की संपूर्ण विषय-वस्तु या उसके किसी भाग में, न्यायालय ऐसे सहमति, समझौते या संतुष्टि को लेखबद्ध करने का आदेश देगा, और उसके अनुसार एक डिक्री पारित करेगा जहां तक यह मुकदमे के पक्षों से संबंधित है, सहमति, समझौते या संतुष्टि की विषय-वस्तु मुकदमे की विषय-वस्तु के समान है या नहीं:,

बशर्ते कि जहां एक पक्ष द्वारा यह आरोप लगाया जाता है और दूसरे द्वारा इनकार किया जाता है कि समायोजन या संतुष्टि हो गई है, न्यायालय प्रश्न का निर्णय करेगा; लेकिन प्रश्न पर निर्णय लेने के उद्देश्य से कोई स्थगन नहीं दिया जाएगा, जब तक कि न्यायालय, दर्ज किए जाने वाले कारणों से, ऐसा स्थगन देना उचित न समझे।

स्पष्टीकरण.-- कोई सहमति या समझौता जो भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 (1872 का 9) के तहत शून्य या शून्यकरणीय है, इस नियम के अर्थ में वैध नहीं माना जाएगा।"

8. उक्त प्रावधान निर्विवाद रूप से दो भागों में है। पहला भाग वहां लागू होता है जहां मुकदमे के पक्षकार उन शर्तों के साथ समझौता करते हैं जिनके आधार पर एक डिक्री निष्पादन योग्य हो सकती है। हालाँकि, दूसरा भाग उस मामले में लागू होगा जहाँ वादी का दावा संतुष्ट है और सहमति की डिक्री के संदर्भ में पक्षकारों द्वारा कोई और कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं है।

यह सच हो सकता है कि मुकदमे के पक्षकारों ने समझौता याचिका पर हस्ताक्षर किए हैं। लेकिन, निर्विवाद रूप से, यहां अपीलकर्ता का प्रतिद्वंद्वी दावा है। उनके द्वारा दायर मुकदमे पर, संजीव शर्मा के मुकदमे पर एक साथ विचार करने की आवश्यकता थी। विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20 को ध्यान में रखते हुए, अदालत किसी एक या दूसरे मुकदमे में अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकती है। किसी समझौते या अन्यथा के कारण, अपीलकर्ता का दावा खारिज नहीं किया जा सकता था। जब कोई समझौता किया जाता है, तो न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि क्या यह कानून की आवश्यकताओं को पूरा करता है। एेसे समझौते की डिक्री जो कानून की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती है वह अवैध है। यह अवैध होगा. इसलिए, इसे लेखबद्ध नहीं किया जा सकता।

समझौते की शर्तों पर संक्षेप में गौर किया जा सकता है:

"(डी) कि प्रतिवादी नंबर 1 वादी के दावे को स्वीकार करता है और उक्त प्रतिवादी नंबर 1 को कोई आपत्ति नहीं है यदि विनिर्दिष्ट अनुतोष् की डिक्री वादी के पक्ष में और प्रतिवादी नंबर 1 के विरूद्ध हुइ है और प्रतिवादी नंबर 1 ने विक्रय विलेख को वादी या उसके मनोनीत व्यक्ति या व्यक्तियों के नाम पर दिनांक 31.3.2003 को या उससे पहले निष्पादित करना होगा, बशर्ते कि विचारण की शेष राशि 24.75 लाख रुपये बैंकर्स चैक/डाफट के माध्यम से भुगतान की जाए। प्रतिवादी नंबर 1 पहली मंजिल के भौतिक खाली कब्जे और किराये के मकान के हिस्से के प्रतीकात्मक कब्जे को सौंप देगा।

(ई) प्रतिवादी नंबर 1 को पूर्व स्थिति में जाना होगा और डिक्री का निष्पादन उपर्युक्त निर्ध्दारित समय के भीतर किया जाना अनिवार्य है और यदि वादी 24.75 लाख रुपये शेष राशि का भुगतान करने में असफल रहता है तो वह विक्रय विलेख का हकदार नहीं होगा और यह माना जाएगा कि वादी के पास संपत्ति खरीदने के लिए कोई धन नहीं था।

XXX XXX XXX

(i) प्रतिवादी नंबर 2 अर्जन सिंह ने भी प्रतिवादी नंबर 1 के खिलाफ उसी संपत्ति यानी हाउस नंबर 169, सेक्टर 11-ए, चंडीगढ़ के संबंध में एक वाद दायर किया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि अनुबंध 21.6.1995 को हुआ था। प्रतिवादी संख्या 1 के साथ वादी के अनुबंध के बाद उक्त वाद न्यायालय में भी विचाराधीन है। वादी उक्त मुकदमे में पूर्व से ही प्रतिवादी है और उक्त मुकदमे में वादी के खिलाफ किसी अनुतोष की मांग नहीं की है। उक्त मुकदमे का जो परिणाम आयेगा वह प्रतिवादी नंबर 1 की एकमात्र जिम्मेदारी होगी और उक्त मुकदमे में बयाना राशि, क्षति, ब्याज का दायित्व अकेले प्रतिवादी नंबर 1 की जिम्मेदारी होगी।"

9. यह विक्रय विलेख केवल समझौते की कथित शर्तों के अनुसरण में या उन्हें आगे बढ़ाने के लिए 25.3.2003 को निष्पादित किया गया था।

पक्षकारों द्वारा और उनके बीच किया गया समझौता इस धारणा पर आगे बढ़ा कि अपीलकर्ता के मामले में विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए कोई डिक्री पारित नहीं की जाएगी। यह गलत तरीके से दर्ज किया गया कि अपीलकर्ता मुकदमे में केवल एक पूर्व से ही प्रतिवादी है।

10. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने समझौता दर्ज करते समय स्पष्ट रूप से कहा:

> "वादी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि पक्षकारों के मध्य समझौता हो गया है और समझौता को पत्रावली में Ex.C-1 के रूप में रखा गया है। दोनों पक्षों यानी वादी और प्रतिवादी नंबर 1 ने अपने बयान अलग-अलग दर्ज कराए थे। कि वे इस बात पर सहमत हैं कि वादी के मुकदमे का फैसला समझौते के अनुसार किया जाता है। समझौते Ex.C-1 के अनुसार प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ कोई दावा नहीं किया गया सुना गया।
>
> वादी का मुकदमा डिक्री किया जाता है क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 ने विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए वादी के दावे को स्वीकार कर लिया है और वह इस बात पर सहमत था कि वह वादी के पक्ष में या मनोनीत व्यक्तियों के नाम पर दिनांक 31.3.2003 को या उससे पहले, विक्रय विलेख इस आधार पर निष्पादित कराएगा कि विचारण मूल्य की शेष राशि 24.75 लाख रुपये के भुगतान के अधीन होगी और प्रतिवादी नंबर 1 पहली मंजिल के भौतिक खाली कब्जे

और मकान के किराये के हिस्से के प्रतीकात्मक कब्जे को सौंप देगा।

वादी औपचारिकताएं पूरी करेगा और विक्रय विलेख के निष्पादन और पंजीकरण से 3 दिन पहले प्रतिवादी नंबर 1 या उसके अधिवक्ता को सूचित करना होगा।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं है. वादी का मुकदमा समझौता Ex.C-1 के मद्देनजर डिक्री किया गया है जिसे डिक्री के भाग के रूप में पढ़ा जाना है। तदनुसार डिक्री शीट तैयार की जाए और उचित कार्यवाही के बाद पत्रावली को रिकॉर्ड रूम में भेज दिया जाए।"

11. इसलिए, विचार के लिए उठे प्रश्नों में से एक यह है कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3 का पहला भाग लागू होगा या दूसरा। हमारी राय में विचारण न्यायाधीश ने यही सही समझा है कि यह एक ऐसा मामला था जहां आदेश 23 नियम 3 का पहला भाग लागू हुआ। चूंकि अपीलकर्ता समझौते में पक्षकार नहीं था, इसलिए यह उस पर बाध्यकारी नहीं था। यह प्रकरण सीधे तौर पर मृतका पुष्पा देवी भगत बजिरये विद्वान साधना राव बनाम राजिंदर सिंह और अन्य [(2006) 5 एससीसी 566] मामले में इस न्यायालय के फैसले से जुड़ा है जिसमें दो आपत्ति तैयार की गई थीः

"(i) क्या पुष्पा देवी द्वारा दायर अपील सहमति डिक्री के खिलाफ सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के तहत सुनवाई योग्य थी।

(ii) क्या दिनांक 18.7.2001 को सहमत डिक्री के परिणामस्वरूप दिनांक 23.5.2001 को हुआ समझौता आदेश 23 नियम 3 सीपीसी के तहत वैध समझौता नहीं था।"

उक्त प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित शब्दों में दिया गया, राय व्यक्त की गईः

"19. नियम 3 के पहले भाग और दूसरे भाग के बीच क्या अंतर है? पहला भाग उन स्थितियों को संदर्भित करता है जहां एक सहमति या समझौता पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित एवं लिखित रूप में दर्ज किया जाता है। उक्त सहमति या समझौते को न्यायालय के समक्ष रखा गया। जब अदालत इस बात से संतुष्ट हो जाती है कि मुकदमे को पूरी तरह या आंशिक रूप से ऐसे समझौते या पक्षकारों द्वारा लिखित और हस्ताक्षरित समझौते द्वारा समायोजित किया गया है और यह वैध है, तो पक्षकारों के बीच सहमति के अनुसार एक डिक्री की पालना की जाती है। सहमति/समझौता उन सहमत शर्तों को बताता है जिनके द्वारा दावे को स्वीकार

किया जाता है या आपसी समझौते या वादों द्वारा समायोजित किया जाता है, ताकि भविष्य में पक्षकार उन शर्तों पर रहे और इसे इस रूप में डिक्री के निष्पादन हेतु लागू किया जाए। दूसरी ओर, दूसरा भाग उन मामलों को संदर्भित करता है जहां प्रतिवादी ने वादी को दावे के बारे में संतुष्ट कर दिया है। यह वादी को संतुष्ट करके हो सकता है कि उसका दावा पूरा नहीं किया जा सकता है या उसे निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं है। यह वांछित इकरारनामे के निर्वहन या पालन से भी हो सकता है। जहां प्रतिवादी मुकदमे की विषय-वस्तु के संबंध में वादी को इतना "संतुष्ट" कर देता है, वहां कुछ भी करने या लागू करने के लिए शेष नहीं रहता है और शर्तों के अनुसार पारित किए जाने वाले डिक्री के "प्रवर्तन" या "निष्पादन" का कोई सवाल ही नहीं है।"

12. हमारी राय में समझौता अवैध था। मुद`दा यह है कि इसका क्या प्रभाव होगा, लेकिन इससे पहले कि हम उस पर ध्यान दें, विद्वान विचारण न्यायाधीश के एक और निष्कर्ष को भी ध्यान में रखा जा सकता है।

13. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने दिनांक 2.2.1996 को एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसे इसी कारणों से निर्विवाद रूप से समय-समय पर बढ़ाया गया। इसी कारण से, डॉ. बावा को संपत्ति हस्तांतरित करने से रोक दिया गया था। संजीव शर्मा के मामले में निषेधाज्ञा का एक समान आदेश पारित किया गया था जिसे दिनांक 28.5.1997 को पुष्ट किया गया था।

14. हालाँकि, यह फिर से किसी भी विवाद से परे है कि निषेधाज्ञा का उक्त आदेश समय-समय पर जारी रहा। यह 16.10.1996 तक क्रियाशील था। विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा यह देखा गया है कि विस्तार के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। हालाँकि मामला दूसरी अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया था, क्योंकि पीठासीन अधिकारी दिनांक 16.10.1996 को अवकाश पर थे और बाद में अंतरिम आदेश को न तो बढ़ाया गया और न ही रद्द किया गया।

15. क्या निषेधाज्ञा का आदेश सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 के नियम 2ए के प्रावधानों को प्रभावित करने या उसकी धारा 151 के तहत अदालत के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार को लागू करने के लिए लागू था?

विद्वान विचारण न्यायाधीश ने राय दी कि ऐसा इसलिए था क्योंकि अदालत को इसके तहत उचित आदेश पारित करना था। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायाधीश के उपरोक्त निष्कर्ष से असहमति

जताते हुए कहा कि निषेधाज्ञा का कोई भी आदेश प्रभावी नहीं था। इसके अलावा, यह माना गया कि अदालत के आदेश के उल्लंघन में किया गया कोई कार्य अवैधानिक है; यह एक अवैध है। उच्च न्यायालय का निर्णय प्राणकृष्ण और अन्य बनाम उमाकांत पांडा और अन्य [एआईआर 1989 उड़ीसा 148], फणी भूषण डे बनाम सुधामयी रॉय और अन्य [91 कलकत्ता साप्ताहिक नोट्स 1078] और हरबालास और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य 1973 पंजाब लॉ जर्नल, 84]।सहित विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों पर आधारित है।

16. हम इस मुद्दे पर हाई कोर्ट से सहमत हैं. यदि निषेधाज्ञा का आदेश किसी विशेष तिथि तक प्रभावी था, तो तकनीकी रूप से निषेधाज्ञा का आदेश उसके बाद लागू नहीं रहेगा। इस प्रकार भूमि के स्वामी डॉ. बावा और प्रतिवादी नंबर 2 संजीव शर्मा ने समझौता कर सकते थे।

इसका प्रभाव यह होगा कि उक्त विक्रय विलेख अपीलकर्ता पर बाध्यकारी नहीं होगा। यह लिस पेंडेंस के सिद्धांत से प्रभावित होगा, जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 52 के तहत दर्शाया गया है। उक्त विक्रय विलेख अपीलकर्ता के पक्ष में डिक्री पारित करते समय के रास्ते में नहीं आएगा। इसकी वैधता या अन्यथा पर विचार करना आवश्यक नहीं होगा क्योंकि अपीलकर्ता इससे बाध्य नहीं है। यह माना जाएगा कि संजीव शर्मा और फलस्वरूप पुनीत अहलूवालिया को मुकदमे के लंबित होने की

जानकारी थी। यहां तक कि विशेष राहत अधिनियम की धारा 19 भी लागू होगी।

17. श्री गुप्ता द्वारा सुरजीत सिंह बनाम हरबंस सिंह [एआईआर 1996 एससी 135: (1995) 6 एससीसी 50] इस पर भरोसा रखा गया है, जिसमें इस न्यायालय ने राय दी थी:

> "4...प्रतिबंध आदेश की अवहेलना में, अलगाव/समनुदेशन किया गया था। यदि हम इसे ऐसे ही जाने देते हैं, तो यह न्याय के उद्देश्यों और प्रचलित सार्वजनिक नीति को विफल कर देगा। जब न्यायालय एक विशेष स्थिति का इरादा रखता है मामलों के अस्तित्व में रहने के दौरान जब यह किसी मामले की स्थिति में होता है, तो उस स्थिति को न केवल बनाए रखने की आवश्यकता होती है, बल्कि न्यायालय के आदेश मिलने तक इसे अस्तित्व में माना जाता है अन्यथा इन परिस्थितियों में न्यायालय का कर्तव्य है, साथ ही अधिकार भी है, अलगाव/असाइनमेंट को उसके उद्देश्यों के लिए बिल्कुल भी नहीं किया गया माना जाए..."

18. कानून के उपरोक्त प्रस्ताव के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता है। यह निर्णय श्री मेहता द्वारा उठाए गए सवालों का जवाब देता है कि निषेधाज्ञा के आदेश का उल्लंघन करने के परिणामों को केवल सिविल

प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 के नियम 2 ए तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। हमें इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहिए कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के तहत अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए एक अदालत भी, इस निष्कर्ष पर पहुंचने की स्थिति में कि संयम के आदेश का उल्लंघन हुआ है, ला सकती है। पक्षों को उसी स्थिति में लौटाएँ जैसे कि निषेधाज्ञा के आदेश का उल्लंघन नहीं किया गया हो। [गुरुनाथ मनोहर पावस्कर और अन्य। वी. नागेश सिद्दप्पा नवलगुंड और अन्य । [2007 (14) स्केल 283]

19. इसके अलावा, किसी दिए गए मामले में, अदालत हैडकिंसन बनाम हैडकिंसन [(1952) 2 ऑल ईआर 567] में बताए गए नियम को भी लागू कर सकती है। हालाँकि, उक्त सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा प्रवीण सी. शाह बनाम केए मोहम्मद में समझाया गया है। अली और अन्य [(2001) 8 एससीसी 650] दर्शाते हुए:

> "21. निष्कर्ष् बिना किसी संदेह के भारत की अदालतों पर लागू हो सकता हैं और साथ ही अधिवक्ता अधिनियम के तहत बार काउंसिल में निहित अनुशासनात्मक शक्तियों में बाधा डाले बिना भी लागू हो सकती हैं।
>
> {बार काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम केरल उच्च न्यायालय भी देखें [(2004) 6 एससीसी 311]}"

20. हालाँकि, चूँकि इस मामले में, निषेधाज्ञा के किसी आदेश का उल्लंघन नहीं किया गया था, इसलिए उक्त सिद्धांत का कोई अनुप्रयोग नहीं है।

इसलिए, बिक्री विलेख को रद्द करने की आवश्यकता नहीं है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 52 और विशिष्ट अनुतोष् अधिनियम की धारा 19 के संबंध में इसका अपना प्रभाव होगा ।

हालाँकि, विद्वान विचारण न्यायाधीश का यह मानना सही था कि कथित समझौता कानून की दृष्टि में सही नहीं था। सभी पक्षों की लिखित सहमति के बिना यह अवैध था। हमें इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या यह धोखाधड़ी थी या नहीं, लेकिन निर्विवाद रूप से न केवल यह पक्षों पर बाध्यकारी नहीं था, इस प्रकृति के मामले में न्यायालय अपीलकर्ता के मामले पर विचार करते समय इस तथ्य पर ध्यान नहीं देगी। कि विक्रय का कोई भी विलेख उसके अनुसरण में निष्पादित किया गया है। प्रतिवादी संख्या 3, इन निष्कर्षों के तार्किक परिणाम के रूप में, बिना सूचना के मूल्य के लिए वास्तविक क्रेता होने की दलील देने का हकदार नहीं होगा। विशिष्ट अनुतोष् अधिनियम, 1963 की धारा 20 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ऐसे अन्य आदेश या आदेश भी पारित कर सकती है, जैसा वह उचित और उचित समझे। उस सीमा तक विद्वान विचारण न्यायाधीश के

फैसले को बरकरार रखा जाना चाहिए और वह उच्च न्यायालय के फैसले को अपास्त किया जाना चाहिए।

हालाँकि, हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि अपीलकर्ता न्यायालय के आदेश के उल्लंघन से विपरीत रूप से प्रभावित नहीं होगा, लेकिन चूंकि उस संबंध में विद्वान विचारण न्यायाधीश के फैसले में कहा गया कानूनी सिद्धांत सही नहीं है, इसलिए वह इस मामले में लागू नहीं होगा। चूंकि निषेधाज्ञा का कोई आदेश प्रभावी नहीं था, इसलिए न्यायालय कोई भी आदेश भूतलक्षी प्रभाव से आदेश पारित नहीं कर सकती है जो कि पक्षों के अधिकारों के संबंध में बताता है। उक्त आशय के लिए, न्यायालय को आकस्मिक कार्यवाही और पूरक कार्यवाही के बीच अंतर करना चाहिए। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 94 में निहित पूरक कार्यवाही के प्रावधानों के संदर्भ में निषेधाज्ञा का आदेश पारित किया जा सकता है। पूरक कार्यवाही को प्रभावी करते समय एक स्पष्ट आदेश पारित किया जाना चाहिए जो न्यायालय की आकस्मिक शक्ति के अतिरिक्त है। अंतर ठीक है लेकिन वास्तविक है।

21. उपरोक्त कारणों से, आक्षेपित निर्णय को उपरोक्त सीमा तक रद्द किया जाता है। अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को अपीलकर्ता की

लागत वहन करनी होगी। अधिवक्ता की फीस 50,000/- रुपये (केवल पचास हजार रुपये) आंकी गई है।

आर.पी

पक्षकारों की अपील स्वीकार की जाती है।

चेतावनी: यह अनुवाद आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स टूल 'सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्वेता गुप्ता, (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणित होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।